# अपना ग्लेशियर खुद बनाओ

**डॉ. अरविंद गुप्ते**

केदारनाथ में पिछले दिनों हुई भयंकर तबाही का एक कारण मंदिर के ऊपर स्थित चोराबारी ग्लेशियर का पिघलना बताया गया है। इससे आम लोगों के मन में ग्लेशियर के प्रति डर पैदा होना स्वाभाविक है। किंतु यह दुर्घटना कुछ ऐसी थी मानों किसी तालाब की पाल टूट जाए और उससे निकलने वाले पानी से तबाही हो जाए। वैसे तालाब तो एक उपयोगी जलाशय ही होता है। ठीक उसी प्रकार ग्लेशियर मानव के लिए वरदान हैं।

पहाड़ों की ऊंचाइयों पर सर्दियों में बर्फ पड़ती है। इसमें से कुछ बर्फ पिघल कर पानी बन जाती है जो नदियों में बह जाता है। किंतु जमी रहने वाली बर्फ की मात्रा पिघलने वाली बर्फ की मात्रा से अधिक होने के कारण पहाड़ के ऊपर बर्फ की एक परत बन जाती है। साल-दर-साल इस परत पर बर्फ गिरती रहती है और वह मोटी होती जाती है। अंत में अपने स्वयं के भार के कारण यह परत पहाड़ से खिसक कर एक बहाव के रूप में नीचे आने लगती है। इस प्रकार बनने वाली बर्फ की नदी को ग्लेशियर या हिमनद कहते हैं।

पृथ्वी पर स्थित मीठे पानी का एक बहुत बड़ा हिस्सा ग्लेशियरों में भंडार के रूप में संग्रहित रहता है। गर्मी के मौसम में ग्लेशियर पिघलने लगते हैं और इनसे निकलने वाला पानी नदियों में बहने लगता है। यही कारण है कि हिमालय से निकलने वाली नदियों में गर्मी के मौसम में बाढ़ आती है। वैसे भी हिमालय से निकलने वाली नदियों में पूरे वर्ष पाए जाने वाले पानी का एक बड़ा हिस्सा ग्लेशियरों से ही आता है। यदि हिमालय के सारे ग्लेशियर समाप्त हो जाएं तो गंगा, यमुना जैसी बड़ी नदियों का अस्तित्व ही समाप्त जाएगा। जीव-जंतुओं, पेड़-पौधों और मनुष्य का जीवन काफी हद तक ग्लेशियरों पर निर्भर करता है।

जम्मू-कश्मीर का लद्दाख एक काफी सूखा क्षेत्र है और पानी की कमी के कारण यहां खेती-बाड़ी करना एक मुश्किल काम है। इस क्षेत्र में वर्षा बहुत कम होती है, किंतु पहाड़ों पर स्थित ग्लेशियरों से नदी-नालों में आने वाले पानी का उपयोग इस क्षेत्र के लोग सिंचाई के लिए और पेयजल के रूप में करते हैं। पिछले वर्षों में बढ़ी वैश्विक तपन के कारण लद्दाख और पूरे हिमालय के ग्लेशियर सिकुड़ने लगे हैं और इनके पानी पर निर्भर रहने वाली आबादी के लिए संकट खड़ा हो गया है। खेत सूखने लगे हैं और मवेशियों तथा मनुष्यों के लिए पेयजल की कमी हो गई है। कुछ लोग यह मानते हैं कि यह वैश्विक तपन के कारण हो रहा है, तो कुछ लोग इसे दैवी प्रकोप मानते हैं। किंतु दोनों में से किसी भी कारण पर विश्वास करें तो आम धारणा तो यही है कि इसका कोई इलाज नहीं है। किंतु लद्दाख के मुख्यालय लेह में रहने वाले सिविल इंजीनियर चेवांग नॉरफेल ने इस समस्या का इलाज खोज लिया है।

लेह के एक मध्यम वर्गीय परिवार से आने वाले नॉरफेल ने लखनऊ से सिविल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा प्राप्त किया और उन्हें 1960 में जम्मू-कश्मीर शासन के ग्रामीण विकास विभाग में नियुक्ति मिली। 1995 में वे सेवानिवृत्त हुए और 1996 में लेह न्यूट्रीशन प्रोजेक्ट नामक स्वयंसेवी संस्था के साथ वॉटरशेड विकास के परियोजना प्रबंधक के रूप में कार्य करने लगे।

नॉरफेल ने देखा कि उनके आंगन में बहने वाले एक नाले में पानी कलकल बहता रहता था किंतु जहां यह नाला

पहाड़ी पीपल पेड़ों के झुरमुट से धीमी गति से गुज़रता था वहां उसका पानी जमकर बर्फ बन जाता था। इसका कारण यह था कि बहते पानी की गति इतनी तेज़ थी कि उसे जमने का समय ही नहीं मिलता था। इसके विपरीत, पेड़ों के नीचे धीमी गति से बहने वाला पानी जम जाता था। इससे उनके दिमाग में विचार आया कि क्यों न इस विधि से कृत्रिम ग्लेशियर बनाए जाएं। तब उन्होंने उस नाले के पानी को एक छोटी घाटी में मोड़ दिया और उस पर कई स्थानों पर चेक डैम बनाकर उसके बहाव को धीमा कर दिया। जाड़े के दिनों में इस नाले का पूरा पानी बर्फ बन कर एक छोटे ग्लेशियर का रूप लेने लगा।

इसके बाद नॉरफेल ने अपनी परियोजना की शुरुआत की और गांवों के ठीक ऊपर पहाड़ों पर कृत्रिम ग्लेशियर बनाना शुरू किया। ये ग्लेशियर प्राकृतिक ग्लेशियरों से कम ऊंचाई पर होने के कारण कुछ पहले यानी अप्रैल में पिघलने लगते हैं और इनका पानी गांव की सिंचाई नालियों में आने लगता है। यह वह समय होता है जब खेतों में अंकुरित फसलों को सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, बोनस के रूप में इन नालियों से भूजल का पुनर्भरण भी हो जाता है। प्राकृतिक ग्लेशियर मई-जून में पिघलने लगते हैं। इस प्रकार फसलों को अधिक समय तक पानी मिलता रहता है। सन 2001 से 2012 के बीच नॉरफेल 12 ग्लेशियरों का निर्माण कर चुके हैं। उनका सबसे बड़ा ग्लेशियर 1000 फीट लम्बा, 150 फीट चौड़ा और 4 फीट मोटा है। यह एक हज़ार की आबादी वाले गांव को लगभग दो माह तक पानी प्रदाय कर सकता है। इस कृत्रिम ग्लेशियर को बनाने की लागत केवल 90,000 हज़ार रुपए आई है जबकि सीमेंट के छोटे बांध की कीमत इससे लगभग पांच-छह गुना अधिक होती है। कृत्रिम ग्लेशियर बनाने के लिए आवश्यक सामग्री स्थानीय स्तर पर ही उपलब्ध हो जाती है और ग्रामवासी स्वयं ही इसका निर्माण कर सकते हैं। इन छोटे जलाशयों के आसपास पॉपलर और विलो के पेड़ लगा दिए जाते हैं ताकि छांव के कारण पानी कम समय में बर्फ बन सके।

नॉरफेल की सफलता का समाचार जैसे-जैसे फैलने लगा है, उनके काम को देखने और उनसे सीखने के लिए देश के अन्य पहाड़ी क्षेत्रों के और विदेशों के इंजीनियर आने लगे हैं।

नॉरफेल का सपना है कि वे 1000 गांवों के लिए कृत्रिम ग्लेशियरों का निर्माण करें, किंतु खेद की बात यह है कि इस अनूठे काम में भी उन्हें कठिनाइयों का सामना कर पड़ रहा है। जम्मू-कश्मीर शासन से उनकी संस्था को वॉटरशेड विकास के लिए मिलने वाली राशि में कटौती कर दी गई है। इसके अलावा, वह नियमित रूप से मिलती भी नहीं है। दूसरी कठिनाई यह है कि ग्रामवासियों का सहयोग आशा के अनुरूप नहीं मिल रहा है। सन 2001 में जब पहला कृत्रिम ग्लेशियर बना तब कई गांवों के लोग उत्साहित हो कर इस काम में जुट गए। उन्होंने चेक डैम बनाए, सिंचाई का साधन उपलब्ध हो जाने के कारण खाली पड़ी ज़मीनों पर खेती करना शुरू कर दिया और खेतों में विलो और पॉपलर के पेड़ रोपे। किंतु बाद में उनमें आपस में झगड़े होने लगे और वे एक-दूसरे पर पानी की चोरी का आरोप लगाने लगे। गांवों की वॉटरशेड समितियां भी सरकार से रख-रखाव के लिए मिलने वाली राशि का सही उपयोग करने में कोताही बरतने लगीं। इसका परिणाम यह हुआ कि इन गांवों के ग्लेशियर असफल हो गए।

किंतु 74 वर्षीय नॉरफेल इन कठिनाइयों से निराश नहीं हैं। वे लगातार यह सोचते रहते हैं कि यदि उन्हें अधिक धनराशि उपलब्ध हो तो वे अपनी परियोजना में क्या-क्या सुधार कर सकते हैं। उनकी मान्यता है कि वे प्राकृतिक ग्लेशियरों का सिकुड़ना भले न रोक सकें, इसके दुष्परिणामों से अपने क्षेत्र को और उसके निवासियों को कुछ हद तक बचा ज़रूर सकते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***